सर्वांगीण विवरण का पूर्ण मर्मज्ञ बड़ा दुर्लभ है। जो आत्मज्ञान से कल्याण को प्राप्त हो चुका है और नाना प्रकार से आत्म-स्वरूप का वर्णन कर सकता है, ऐसा महापुरुष तो और भी अधिक दुर्लभ है। परन्तु यह सत्य है कि यदि किसी प्रकार आत्मतत्त्व का बोध हो जाय तो जीवन सार्थक हो जायगा। इस आत्मज्ञान की सर्वाधिक सुगम पद्धति यह है कि अन्य मतों से मार्गच्युत हुए बिना, परम प्रमाण भगवान् श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निस्यन्दित गीतामृत को हृदयंगम कर लिया जाय। परन्तु यह निश्चित है कि वही मनुष्य श्रीकृष्ण को 'भगवान्' मानता है, जिसने इस जन्म में अथवा पूर्वजन्म में महान् तप-त्याग किया हो। वस्तुतः शुद्धभक्त की अहैतुकी अमोघ कृपा के प्रताप से ही श्रीकृष्ण के तत्त्व का बोध हो सकता है, अन्यथा नहीं।

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि।।३०।।

देही=प्राकृत देह का स्वामी जीवात्मा; **नित्यम्**=सदा; **अवध्यः**=अवध्य है; **अयम्**=यह; **देहे**=देह में; **सर्वस्य**=सबके; **भारत**=हे भरतवंशी अर्जुन; **तस्मात्**=इस-लिए; **सर्वाणि**=सम्पूर्ण; **भूतानि**=प्राणियों के लिए; **न**=नहीं; **त्वम्**=तू; **शोचितुम्**=शोक करने के; **अर्हसि**=योग्य है।

अनुवाद

हे भरतवंशी अर्जुन! देह में निवास करने वाला आत्मा कभी नहीं मारा जा सकता। इसलिये किसी भी प्राणी के लिए तू शोक करने के योग्य नहीं है।।३०।।

तात्पर्य

इस श्लोक में श्रीभगवान् अविकारी आत्मा के तत्त्व-निरूपण का उपसंहार करते हैं। श्रीकृष्ण ने विविध प्रकार से आत्मतत्त्व का वर्णन करके आत्मा को अविनाशी और देह को अनित्य सिद्ध किया है। इस कारण अर्जुन के लिए इस भयवश स्वधर्म से विमुख होना योग्य नहीं है कि युद्ध में पितामह भीष्म तथा द्रोणाचार्य का निधन हो जायगा। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रमाण के आधार पर प्राकृत देह से भिन्न आत्मा का पृथक् स्वरूप स्वीकार करना ही होगा, यह नहीं कि आत्मतत्त्व में विश्वास न करे अथवा यह माने कि जीवन का प्रादुर्भाव रसायनों की अन्तःक्रिया की एक विशेष अवस्था में होता है।

आत्मा को नित्य कहने का यह अभिप्राय नहीं कि हिंसा को प्रोत्साहित किया गया है। साथ ही, युद्ध-काल में नितान्त आवश्यक होने की स्थिति में उसका निषेध भी नहीं है। परन्तु ऐसी आवश्यकता भी भगवत्-आज्ञा के आधार पर न्यायसंगत सिद्ध होनी चाहिए, स्वेच्छा से नहीं।

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते।।३१।।

स्वधर्मम्=अपने धर्म को; **अपि**=भी; **च**=और; **अवेक्ष्य**=विचार कर; **न**=नहीं;